



2026:AHC: 38801

प्रकाशनार्थ स्वीकृत

उच्च न्यायालय, इलाहाबाद

मामला अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या - 1534 वर्ष 2015

विजेंद्र सिंह एवं अन्य

.....याचिकाकर्ता(गण)

बनाम

जय भगवान एवं अन्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

याचिकाकर्ता(गण) के अधिवक्ता : एम.के. गुप्ता, पंकज अग्रवाल, श्रेया गुप्ता

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता : गुलरेज़ खान, ओंकार सिंह, एस.सी., डब्ल्यू.एच. खान

और 1 संबंधित वाद

न्यायालय संख्या-5

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 28 के तहत अनुबंध को रद्द करना

1. दोनों याचिकाओं में निर्णय-ऋणी-याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री पंकज अग्रवाल और डिक्री-धारक-प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता श्री गुलरेज़ खान की दलीलें सुनी गईं।

2. ये दोनों याचिकाएं बिक्री के समझौते के 'विनिर्दिष्ट अनुपालन' (अनुबंध के विनिर्दिष्ट पालन) के लिए डिक्री के निष्पादन की कार्यवाही से जुड़ी हैं; यह डिक्री माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक अंतिम रूप ले चुकी है।

3. निष्पादन न्यायालय ने दो आदेश पारित किए: एक आदेश में निर्णय-ऋणी (जिसके खिलाफ निर्णय हुआ है) द्वारा 'विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963' की धारा 28 के तहत दायर आवेदन 3-सी को खारिज कर दिया गया और अनुबंध को रद्द न मानने का निर्णय किया गया; दूसरे आदेश में डिक्री-धारक (जिसके पक्ष में निर्णय हुआ है) द्वारा दायर आवेदन 10-सी को स्वीकार कर लिया गया, जिसमें उसने आवेदन के साथ संलग्न ₹95,000/- का टैंडर पेश करने की अनुमति मांगी थी। निर्णय-ऋणी द्वारा दायर दो पुनरीक्षण याचिकाओं में इन आदेशों को बरकरार रखा गया।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



तथ्य और कार्यवाही

4. याचिकाकर्ताओं ने 23.09.1979 को प्रत्यर्थियों के पक्ष में बिक्री का एक समझौता किया था। जब इस समझौते का पालन नहीं किया गया, तो प्रत्यर्थियों ने समझौते को लागू करवाने (विनिर्दिष्ट अनुपालन) के लिए मूल वाद सं. 283/1980 दायर किया। विचारण न्यायालय ने 09.02.1982 को यह वाद खारिज कर दिया, जिसके विरुद्ध वादी ने सिविल अपील सं. 269/1982 दायर किया; इसे 05.03.1999 को स्वीकार कर लिया गया और वाद का निर्णय वादी के पक्ष में (डिक्री) सुनाया गया। प्रत्यर्थियों ने इस न्यायालय के सामने दूसरी अपील दायर किया, जिसे 24.03.1999 को खारिज कर दिया गया। इसके बाद, प्रत्यर्थियों ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका सं. 8127/1999 दायर किया; इसे सिविल अपील में बदलने के बाद 09.12.2004 को खारिज कर दिया गया।

5. इसके बाद दोनों पक्षों के बीच डिक्री को लागू करने को लेकर विवाद पैदा हुआ। डिक्री-धारक ने 16.02.2005 को निष्पादन वाद सं. 5/2005 दायर किया और निष्पादन न्यायालय से 95,000 रुपये का टेंडर पास करने और प्रस्तावित विक्रय विलेख का ड्राफ्ट पेश करने की अनुमति देने का अनुरोध करते हुए आवेदन 10-सी दायर की। वहीं, दूसरी ओर, निर्णय-ऋणी ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 28 के तहत आवेदन 3-सी दायर की। इसमें अनुरोध किया गया कि पहली अपीलीय न्यायालय के निर्देशों (एक माह के भीतर बाकी पैसे जमा करने) का पालन न करने के कारण डिक्री-धारक द्वारा अनुबंध का उल्लंघन हुआ है, इसलिए अनुबंध रद्द माना जाए। आवेदन 3-सी खारिज कर दी गई और आवेदन 10-सी स्वीकार कर ली गई। दोनों आदेशों के खिलाफ याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर दो पुनरीक्षण याचिकाएं भी खारिज कर दी गईं।

निर्णय-ऋणी-याचिकाकर्ताओं की ओर से दी गईं दलीलें

6. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि जब वादी पर उस डिक्री का पालन करने की ज़िम्मेदारी थी, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक उनके पक्ष में अंतिम हो गई थी, लेकिन वे ऐसा करने में विफल रहे और पहली अपीलीय न्यायालय के निर्णय और आदेश के अनुसार बाकी पैसे जमा नहीं किए, तो 1963 के अधिनियम की धारा 28 के तहत अनुबंध रद्द हो गया और इसलिए, दोनों आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाना चाहिए। आगे यह भी कहा गया है कि डिक्री के अंतिम रूप से लागू होने तक वादी की तत्परता और इच्छा का सवाल बना रहता है, और इस मामले में, वादी का आचरण उन्हें डिक्री लागू करवाने के अधिकार से वंचित करने के लिए काफी अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



था, क्योंकि जब अपीलीय न्यायालय ने 1999 में डिक्री पारित किया, तो डिक्री-धारक ने 2005 तक कोई निष्पादन आवेदन दायर नहीं किया और इसे निर्णय-ऋणी द्वारा दायर सिविल अपील को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने के दो महीने बाद दायर किया गया था, इसलिए, डिक्री-धारक द्वारा पहली अपीलीय न्यायालय के आदेश/डिक्री के तहत राशि जमा करने में डिक्री के अनुसार एक महीने से अधिक की देरी अनुबंध को रद्द कर देगी।

7. इसके अलावा यह भी कहा गया है कि भले ही इस मामले में 'मर्जर' (विलय) का सिद्धांत सख्ती से लागू हो या न हो - क्योंकि पक्षकारों को यह नहीं पता कि विशेष अनुमति याचिका या सिविल अपील में डिक्री के अमल पर रोक लगाने वाला कोई अंतरिम आदेश था या नहीं - फिर भी, अगर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सामने विशेष अनुमति याचिका/सिविल अपील का लंबित होना डिक्री के अमल में बाधा माना जाए, तो भी वादी ने सिविल अपील खारिज होने के दो महीने बाद आवेदन दाखिल किया। इसलिए, चूंकि पहली अपीलीय न्यायालय द्वारा जमा करने के लिए दिया गया एक महीने का समय जनवरी, 2005 में खत्म हो गया था, इसलिए अमल करने वाली न्यायालय के पास जमा करने का समय बढ़ाने की शक्ति नहीं थी, खासकर तब जब डिक्री-धारक ने अपने आवेदन 10-सी में ऐसी कोई मांग भी नहीं की थी।

डिक्री धारक-प्रत्यर्थियों की ओर से दी गई दलीलें

8. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ताओं की ओर से दी गई दलीलें पहली अपीलीय न्यायालय द्वारा तैयार की गई डिक्री की शर्तों के खिलाफ हैं। डिक्री के मुख्य हिस्से में डिक्री-धारक को पैसे जमा करने का कोई निर्देश नहीं था; बल्कि निर्देश यह था कि निर्णय-ऋणी पहले दिए गए ₹8,000/- के एडवांस पेमेंट को काटकर बाकी बची रकम स्वीकार करे। इसलिए, 1963 के अधिनियम की धारा 28 के लागू होने पर आधारित दलील गलतफहमी पर आधारित है। आगे यह भी कहा गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील खारिज किए जाने के तुरंत बाद, निष्पादन वाद दायर किया गया था। जब निर्णय-ऋणी बाकी रकम लेने को तैयार नहीं था, तो टेंडर के जरिए रकम जमा करने की अनुमति के लिए आवेदन 10-सी दायर की गई थी। यह निश्चित रूप से समय बढ़ाने की मांग के बराबर होगा, और इसलिए, इसके विपरीत दिए गए तर्कों में कोई बल नहीं है।

चर्चा

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



9. मैंने दी गई दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख पर मौजूद सामग्री का परिशीलन किया है।

अपीलीय डिक्री

10. प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा तैयार की गई डिक्री का मुख्य हिस्सा इस मामले में काफी महत्वपूर्ण है। उसे नीचे दिया गया है:-

"आदेश"

अपीलार्थी की अपील सव्यय स्वीकार की जाती है। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मूल वाद सख्या 283/1980 जय भगवान आदि बनाम राज सिंह आदि में पारित निर्णय दिनांक 9-2-1982 निरस्त किया जाता है।

प्रत्यर्थागण को आदेश किया जाता है कि वह वादीगण से विवादित जमीन के सन्दर्भ में इकरारनामे के अनुसार तय धनराशि में से अंकन 8000/- रुपये अग्रिम की धनराशि घटाकर शेष धनराशि 30 दिन के अन्दर प्राप्त कर पंजीकृत बयनामा वादीगण के पक्ष में निष्पादित कर दे। अन्यथा वादीगण को यह अधिकार होगा कि वह न्यायालय द्वारा बयनामा निष्पादित करा ले।"

11. ऐसा लगता है कि पहली अपील न्यायालय का ऐसा कोई निर्देश नहीं था जिसके तहत डिक्री-धारक को कोई रकम जमा करनी पड़ती; बल्कि डिक्री को जैसा लिखा गया है, उसके अनुसार निर्णय-ऋणी पर यह ज़िम्मेदारी थी कि वह डिक्री-धारक से 30 दिनों के अंदर बाकी रकम ले ले। फिर भी, डिक्री की शर्तों के असर पर आगे चर्चा की जाएगी।

अनुबंध रद्द करना

12. अपील के निर्णय के लागू होने वाले हिस्से की खास प्रकृति को देखते हुए, 'विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963' की धारा 28 में इस्तेमाल की गई भाषा को ध्यान से पढ़ना ज़रूरी है। इस प्रावधान का संबंधित हिस्सा इस प्रकार है:-

'28. अचल संपत्ति की बिक्री या पट्टे के लिए किए गए उन अनुबंधों को कुछ खास स्थितियों में रद्द करना, जिनके 'विशिष्ट पालन' (विनिर्दिष्ट पालन) का आदेश दिया जा चुका है।'

(1) जब किसी वाद में अचल संपत्ति की बिक्री या पट्टे के अनुबंध के 'विशिष्ट पालन' का आदेश (डिक्री) दिया गया हो और खरीदार या पट्टेदार, आदेश में दी गई समय-सीमा के भीतर या

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



न्यायालय द्वारा बढ़ाई गई समय-सीमा के भीतर, खरीद की रकम या कोई अन्य राशि (जिसका भुगतान करने का आदेश न्यायालय ने दिया है) का भुगतान नहीं करता है, तो विक्रेता या पट्टा देने वाला उसी वाद में अनुबंध को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकता है। ऐसे आवेदन पर न्यायालय आदेश द्वारा अनुबंध को रद्द कर सकती है - या तो केवल उस पक्ष के संबंध में जिसने चूक की है या पूरी तरह से - जैसा कि मामले में न्याय की आवश्यकता हो।

(2) ""..'

13. धारा 28 को परिशीलन से पता चलता है कि जब खरीदार (यानी वादी), डिक्री द्वारा तय समय या न्यायालय द्वारा दिए गए अतिरिक्त समय के भीतर, खरीद की रकम या कोई अन्य रकम जिसका भुगतान करने का आदेश न्यायालय ने दिया है, उसका भुगतान नहीं करता है, तो विक्रेता उसी वाद में जिसमें डिक्री पारित की गई थी, अनुबंध को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकता है। इसलिए, पैसे जमा न करने के परिणाम तभी सामने आएंगे जब रकम का भुगतान करने का निर्देश दिया गया हो, लेकिन डिक्री-धारक ने उसका पालन न किया हो; अन्यथा नहीं।

14. हालांकि इस मामले में डिक्री-धारक को बाकी रकम का भुगतान करने का कोई निर्देश नहीं है, फिर भी अगर याचिकाकर्ताओं की इस दलील को मान लिया जाए कि बाकी रकम की पेशकश हमेशा डिक्री-धारक को ही करनी होती है और निर्णय-ऋणी को डिक्री-धारक से पैसे का भुगतान करने के लिए नहीं कहना होता है, तो भी इस मामले की कार्यवाही के दौरान हुई घटनाओं पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

15. जाहिर है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आखिरकार 09.12.2004 को सिविल अपील खारिज कर दी थी। इसके ठीक दो महीने बाद निष्पादन वाद सं. 5/2005 और आवेदन 10-सी दाखिल किया गया था। आवेदन 10-सी की सामग्री इस प्रकार है:-

'निवेदन है कि उपरोक्त इजराय डिग्रीदारान ने मदयूनान के विरुद्ध इकरारनामा महायदा बय के आधार पर पारित डिग्री के आधार पर अपने टी हक में बैनामा निष्पादित व पंजीकृत कराने के लिये योजित की है। डिग्रीदारान को अंकन 95,000/- रुपये की धनराशि बजरिये टेण्डर जमा करनी है तथा विक्रयपत्र का प्रारूप दाखिल करना है, जिसकी अनुमति का डिग्रीदारान को दिया जाना आवश्यक है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अतः श्रीमान जी से प्रार्थना है कि उपरोक्त कारण व न्यायहेतु डिग्रीदारान को अंकन 95,000/- की धनराशि न्यायालय में जमा करने की अनुमति प्रदान करते हुये प्रार्थनापत्र के साथ संलग्न टेंडर पास किया जावे तथा विक्रयपत्र का प्रारूप दाखिल करने की अनुमति प्रदान की जाये। अति कृपा होगी।"

16. हालांकि, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने ज़ोर देकर कहा है कि निष्पादन न्यायालय से सिर्फ़ टेंडर पास करने का अनुरोध करने का मतलब समय बढ़ाना नहीं है, लेकिन न्यायालय की राय में, आवेदन 10-सी का स्वरूप निश्चित रूप से डिक्री-धारक के बाकी पैसे जमा करने के इरादे को दर्शाता है और इसी मकसद से उसने सही तौर पर न्यायालय से टेंडर पास करने की अनुमति मांगी थी, जिसके बिना वह निष्पादन की प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ा सकता था। एक बार जब याचिका में चुनौती दिए गए आदेश के तहत साल 2011 में आवेदन मंज़ूर कर ली गई, तो इसका मतलब निश्चित रूप से पैसे जमा करने के लिए समय बढ़ाना ही होगा। आवेदन 10-सी के स्वरूप या उस पर पारित आदेश की कोई दूसरी व्याख्या नहीं की जा सकती या मानी जा सकती है।

समय बढ़ाने/विस्तारित करने की शक्ति

17. इस मामले में समय देने या बढ़ाने की निष्पादन न्यायालय (निर्णय लागू करने वाली न्यायालय) की शक्ति के बारे में 'सावित्री देवी बनाम अशोक कुमार, 2009 (2) ए.आर.सी. 211' मामले में चर्चा की गई है। इसमें 'वी.एस. पलानीचमी चेट्टियार फर्म बनाम सी. अलगप्पन और अन्य, ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 918' में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय सहित कई निर्णयों का हवाला देते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निष्पादन न्यायालय समय बढ़ा सकती है और इस संबंध में विचारण न्यायालय और निष्पादन न्यायालय की शक्तियां एक समान हैं।

18. हाल ही में, 'ईश्वर बनाम भीम सिंह और अन्य' (ए.आई.आर. 2024 एस.सी. 4232) वाद में, लगभग एक जैसी परिस्थितियों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सामने विचार के लिए एक मुद्दा यह था कि क्या निष्पादन न्यायालय (निर्णय लागू करने वाली न्यायालय) के पास अनुबंध रद्द करने और बाकी बिक्री की रकम जमा करने के लिए समय बढ़ाने की अर्जी पर सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार था। इसमें 'रामनकुट्टी गुप्दन बनाम अवारा' (1994) 2 एस.सी.सी. 642 के निर्णय का हवाला दिया गया, जिसमें कहा गया था कि जब विचारण न्यायालय 'विनिर्दिष्ट अनुपालन' (अनुबंध के पालन) का मुकदमा खारिज कर देता है, लेकिन अपील में निर्णय वादी के पक्ष में आता है और निर्णय में शर्तों को पूरा करने के लिए समय तय किया जाता है, तो पैसा अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



जमा न कर पाने की स्थिति में, धारा 28(1) न्यायालय को यह अधिकार देती है कि वह खरीद की रकम या न्यायालय द्वारा भुगतान करने का आदेश दी गई अन्य राशि का भुगतान करने के लिए समय बढ़ा सके, और इसके लिए न्यायालय अपनी शर्तों पर समय दे सकती है।

19. के. कल्पना सरस्वती बनाम पी.एस.एस. सोमसुंदरम चेट्टियार, (1980) 1 एस.सी.सी. 630 वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वादी के अधिवक्ता की मौखिक प्रार्थना पर - जिसमें विचारण न्यायालय के आदेशानुसार पूरी रकम जमा करने की अनुमति मांगी गई थी - अपीलकर्ता को निर्देश दिया गया कि वह उस तारीख से छह महीने के भीतर ब्याज और उसमें बताई गई अन्य शर्तों के साथ रकम जमा करे। न्यायालय ने यह भी कहा कि बाकी रकम के भुगतान के लिए समय बढ़ाने की अर्जी उसी प्रकरण में शुरूआती न्यायालय या अपीलीय न्यायालय में भी दायर की जा सकती है, क्योंकि विचारण न्यायालय का निर्णय अपीलीय न्यायालय के निर्णय में मिल जाता है और उसी निर्णय का निष्पादन किया जा रहा होता है। न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि प्रक्रिया न्याय की सहायक होती है और जब तक प्रक्रिया क्षेत्राधिकार के मुद्दे से जुड़ी न हो, उसे वास्तविक न्याय दिलाने के लिए बदला जा सकता है। इसलिए, तकनीकी बातें वास्तविक न्याय दिलाने में बाधा नहीं बननी चाहिए।

20. चंदा बनाम रत्नी, (2007) 14 एस.सी.सी. 26 वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 1963 के अधिनियम की धारा 28 के तहत अनुबंध को रद्द करने की शक्ति न्यायालय की अपनी मर्जी पर निर्भर करती है और इसका मकसद दोनों पक्षों को पूरा न्याय दिलाना है। भले ही न्यायालय के डिक्री में यह कहा गया हो कि बाकी रकम एक निश्चित तारीख तक जमा करनी है, फिर भी न्यायालय के पास समय बढ़ाने की शक्ति बनी रहती है। इस मामले में अपनी मर्जी का इस्तेमाल करते हुए, न्यायालय को केस के तथ्यों पर गौर करना होता है ताकि यह पता चल सके कि चूक जानबूझकर की गई थी या नहीं। अगर देरी या चूक की कोई वाजिब वजह हो, जैसे कि डिक्री धारक की कोई गलती न हो, तो न्यायालय अनुबंध रद्द करने से इनकार कर सकता है और बकाया रकम जमा करने के लिए समय बढ़ा सकता है।

21. इस मामले में, न्यायालय 'सिविल प्रक्रिया संहिता' की धारा 148 के प्रावधानों की मदद भी ले सकती है, जो इस प्रकार हैं:-

'148. समय बढ़ाना' जब न्यायालय इस कोड के तहत बताए गए या मंजूर किए गए किसी काम को करने के लिए कोई समय-सीमा तय करती है या देती है, तो न्यायालय अपनी मर्जी से अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



समय-समय पर उस समय-सीमा को बढ़ा सकती है कुल मिलाकर तीस दिन से ज़्यादा नहीं, भले ही पहले तय की गई या दी गई समय-सीमा खत्म हो चुकी हो।'

22. सि.प्र.सं. की धारा 148 से यह स्पष्ट है कि न्यायालय अपनी मर्जी से किसी काम को करने के लिए तय समय को बढ़ा सकता है। न्यायालय की राय में, न तो विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 28 और न ही सि.प्र.सं. की धारा 148 में यह बताया गया है कि और समय देने या समय बढ़ाने की शक्ति का इस्तेमाल कब से शुरू किया जा सकता है। कानून बनाने वालों का मकसद सिर्फ यह है कि न्यायालय मामले के तथ्यों के आधार पर ऐसा करने का फैसला अपनी मर्जी से ले। अगर न्यायालय की शक्ति पर कोई रोक लगाई जा सकती है, तो वह सि.प्र.सं. की धारा 148 से लग सकती है, जिसमें समय बढ़ाने की शक्ति को 'कुल मिलाकर तीस दिन से ज़्यादा नहीं' तक सीमित किया गया है; लेकिन यह समय बढ़ाने की अधिकतम सीमा है, न कि वह समय जहाँ से इसे बढ़ाया जाना शुरू किया जा सकता है। साथ ही, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 28 के तहत ऐसी कोई साफ़ कानूनी रोक नहीं है। इसलिए, यह सवाल कि डिफ़्री-धारक ने आवेदन 10-सी कब दाखिल किया, बेमानी हो जाता है।

23. इसलिए, ऐसे वाद में जहाँ न्यायालय के सामने 'विनिर्दिष्ट अनुपालन' (अनुबंध का पालन) के आदेश के तहत पैसे जमा करने के लिए और समय देने का सवाल हो, तो यह देखा जाएगा कि क्या आदेश पाने वाले व्यक्ति (डिफ़्री-धारक) ने आदेश की शर्तों का पालन करने में चूक की थी, और फिर भी न्यायालय ने सतही तौर पर, गलत तरीके से या बिना किसी उचित कारण के और समय दिया या समय बढ़ाया; या क्या आदेश पाने वाले व्यक्ति या खुद न्यायालय को और समय देने का अनुरोध करने या उस पर विचार करने से रोका गया था, जिसके लिए न तो आदेश पाने वाले व्यक्ति और न ही न्यायालय को दोषी ठहराया जा सकता है।

24. जहाँ तक याचिकाकर्ताओं द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पी. श्यामला बनाम गुंडलुर मथन (सिविल अपील सं. 1363-1364, वर्ष 2023; 2023 ए.आई.आर. एस.सी. 1224) के निर्णय का हवाला देने की बात है, तो उस मामले में अनुबंध को रद्द करने के निर्णय को सही ठहराया गया था, लेकिन तथ्य पूरी तरह से अलग थे। उस मामले में, आदेश 2013 में पारित किया गया था और समय बढ़ाने के लिए आवेदन सि.प्र.सं. की धारा 148 के तहत 853 दिनों की देरी से दायर किया गया था, जबकि बीच में कोई रुकावट नहीं थी। उस मामले के तथ्यों में, संबंधित तारीखों पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इतनी अधिक देरी को

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



आदेश पाने वाले व्यक्ति के दावे के लिए घातक माना। मौजूदा मामले में, जब अपील के आदेश के मुख्य हिस्से में आदेश पाने वाले व्यक्ति पर बाकी रकम जमा करने की कोई बाध्यता नहीं थी, और भले ही आदेश को आदेश पाने वाले व्यक्ति के खिलाफ इस तरह पढ़ा जाए कि उसे पैसे जमा करने थे (जबकि उससे ऐसा करने के लिए कहा भी नहीं गया था), तो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील खारिज करने के दो महीने बाद आवेदन 10-सी दाखिल करना आदेश पाने वाले व्यक्ति के दावे के लिए घातक नहीं होगा।

25. इस वाद में, अपील में 1999 में डिक्री पारित की गयी थी। प्रत्यर्थियों की दूसरी अपील 1999 में खारिज कर दी गई थी, और उसके तुरंत बाद, 1999 में ही प्रकरण माननीय सर्वोच्च न्यायालय पहुंचा, जिसने 09.12.2004 को सिविल अपील खारिज कर दी। इसलिए, निर्णय को लागू करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए टेंडर को मंजूरी देने की अर्जी दाखिल करने और उस पर विचार करने का मौका उसी समय आया। डिक्री-धारक ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील खारिज किए जाने के ठीक दो महीने बाद, 16.02.2005 को अर्जी 10-सी दाखिल की। उन्होंने डिक्री का अर्थ इस तरह निकाला कि बकाया रकम उन्हें ही चुकानी थी, जबकि डिक्री की शर्तें कुछ और थीं; चूंकि न्यायालय से उस काम के लिए समय मिलने और अनुरोध करने पर टेंडर मंजूर होने के बिना पैसे स्वीकार नहीं किए जा सकते थे, इसलिए कोई रकम जमा नहीं की जा सकी।

26. अब न्यायालय श्री अग्रवाल की इस दलील पर विचार करता है कि अगर रकम जमा करने के लिए एक (1) महीने का समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की तारीख से गिना जाए - क्योंकि सिविल अपील 09.12.2004 को खारिज कर दी गई थी, इसलिए एक महीने की अवधि उसी तारीख से शुरू होकर 09.01.2005 को खत्म होगी और डिक्री-धारक को उस तारीख तक या उससे पहले बाकी रकम जमा कर देनी चाहिए थी - तो भी, ऐसी स्थिति में समय बढ़ाने की मांग 09.01.2005 के बाद ही उठती, उससे पहले नहीं। इसलिए, 06.02.2005 को ₹95,000/- का टेंडर क्लियर करने के लिए आवेदन 10-सी दाखिल करना उनकी तरफ से सही कदम था और इसे दाखिल करने में कोई देरी नहीं हुई थी। अगर कोई देरी हुई भी थी, तो वह 28 दिनों की हो सकती है, लेकिन इसे डिक्री-धारक के दावे के लिए इतना नुकसानदेह नहीं माना जा सकता कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक मंजूर की गई डिक्री बेकार हो जाए या अनुबंध को रद्द माना जाए। इसलिए, आवेदन 10-सी का समय, चरण, प्रकृति और सामग्री कानून के अनुसार पाए गए

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



हैं और इसे मंजूरी देने में निष्पादन न्यायालय ने कोई गलती नहीं की है। सभी तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, धारा 28 के तहत अनुबंध रद्द करने का कोई मामला नहीं बनता है।

27. ऊपर की चर्चा को देखते हुए, यह न्यायालय आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं पाता है।

साम्या और वाद की अवधि में संतुलन बनाना

28. अंत में, अधिवक्ता श्री पंकज अग्रवाल ने कहा कि चूंकि यह मामला समझौते के 'विनिर्दिष्ट अनुपालन' का है और समय के साथ उस अचल संपत्ति की कीमत बढ़ गई है, इसलिए पैसे जमा करने और भुगतान करने के वाद में साम्या का संतुलन बनाया जाना चाहिए। इस दलील के जवाब में, अधिवक्ता श्री गुलरेज़ खान ने कहा कि वाद की पूरी अवधि के दौरान, संपत्ति का कब्ज़ा 'निर्णय-ऋणी' के पास ही रहा और 'डिक्री-धारक' ने 'निष्पादन न्यायालय' की अनुमति से 2011 में ही रकम जमा कर दी थी, इसलिए उन्हें किसी भी तरह से दंडित नहीं किया जा सकता है।

29. इस वाद में, बिक्री का समझौता 1979 में हुआ था, मूल वाद 1980 में दायर किया गया था, इसे 1982 में खारिज कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध वादी ने 1982 में ही अपील दायर की थी, जिसे 17 साल बाद 1999 में स्वीकार कर लिया गया और वाद का निर्णय वादी के पक्ष में सुनाया गया। प्रत्यर्थियों की दूसरी अपील 1999 में खारिज कर दी गई, जिसके बाद 1999 में ही विशेष अनुमति याचिका दायर की गई; माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 09.12.2004 को एक बहुत विस्तृत आदेश द्वारा सिविल अपील खारिज कर दी। इसके बाद, फरवरी 2005 में संबंधित पक्षों द्वारा आवेदन दायर किए गए और 6 साल बाद उन पर निर्णय हुआ, जिसके बाद 'निर्णय-ऋणी' द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिकाएं 2011 में खारिज कर दी गईं। यह याचिका 2012 में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई थी और बाद में, 2015 में इसे अनुच्छेद 227 के तहत मामले में बदल दिया गया। इस बीच, 05.05.2014 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया जिसमें 2005 के निष्पादन वाद में आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई। अब इस प्रकरण का अंतिम निर्णय इस न्यायालय द्वारा 2026 में किया जा रहा है।

30. यहाँ न्यायालय 'वंश पुत्र प्रकाश डोलस बनाम शिक्षा मंत्रालय और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय व अन्य' (2024 ए.आई.आर. एस.सी. 1924) के प्रकरण में पारित निर्णय का

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



ज़िक्र करना उचित समझती है। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'मनोज कुमार बनाम भारत संघ' 2024 (3) एस.सी.सी. 563 में अपने पिछले निर्णय का हवाला देते हुए कहा था कि लोक विधि की कार्यवाही में, जब यह महसूस हो कि समय बीतने के कारण मांगी गई राहत पाना मुमकिन नहीं है, तो संवैधानिक न्यायालयों को दावे को बेकार मानकर खारिज नहीं करना चाहिए। मुकदमेबाजी के दौरान, समय का बीत जाना कभी मददगार तो कभी रुकावट बन सकता है। न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह समय की सीमाओं से ऊपर उठकर अपनी मुख्य ज़िम्मेदारी निभाए, यानी शक्तियों के इस्तेमाल या मनमाने फैसलों पर नियंत्रण और नियमन करें। यह भी देखा गया है कि किसी कार्रवाई और न्यायालय द्वारा उस पर बाद में निर्णय सुनाने के बीच समय का अंतर मुआवजा या बहाली देने में मुश्किलें पैदा करता है। फिर भी, न्यायालय को उचित उपाय और बहाली के रूप में राहत देकर लोक विधि की कार्यवाही के मुख्य उद्देश्य को पूरा करने की कोशिश करनी चाहिए।

31. समस्त तथ्यों और परिस्थितियों, ऊपर उल्लिखित कानून और अनुबंध के विनिर्दिष्ट पालन के बाद में साम्या को संतुलित करते हुए, जहाँ वाद कई चरणों से गुजरने के बाद एक लंबी अवधि के उपरांत अंतिम रूप से निर्णित किया जा रहा है, दोनों याचिकाओं को खारिज करते हुए और आक्षेपित आदेशों को बरकरार रखते हुए, एतद्वारा यह निर्देशित किया जाता है कि डिक्री-धारक निष्पादन न्यायालय के समक्ष आज से दो महीने की अवधि के भीतर ₹2,00,000/- (दो लाख रुपये) की अतिरिक्त राशि जमा करेगा। उक्त धनराशि जमा होने पर, निष्पादन न्यायालय डिक्री के निष्पादन हेतु तत्काल सभी प्रयास करेगा और एक महीने के भीतर निर्णय-ऋणी के माध्यम से विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए, और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो डिक्री-धारक के पक्ष में स्वयं उसे निष्पादित कराने के लिए कार्यवाही करेगा। इसके तहत निर्णय-ऋणी से विक्रय विलेख निष्पादित करवाई जाएगी, और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो न्यायालय स्वयं डिक्री-धारक के पक्ष में इसे निष्पादित करेगी।

32. अतः, उपरोक्त टिप्पणियों के साथ दोनों याचिकाएं **खारिज** की जाती हैं।

(न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र)

19 जनवरी, 2026

साजिया

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।